



नेहा बाजपेयी, 2.डॉ० हरिकांत मिश्र

घेरण्ड संहिता में वर्णित षट्कर्म का समीक्षात्मक अध्ययन

शोध अध्ययनी, जे०आर०एफ० (योग विभाग), 2. शोध निर्देशक एवं विभाग अध्यक्ष-दर्शन विभाग, जगद्गुरु राममद्राचार्य दिव्यांग राज्य विश्वविद्यालय, चित्रकूट (उ०प्र०) भारत

Received-04.09.2025,

Revised-11.09.2025,

Accepted-18.09.2025

E-mail :nb9912409@gmail.com

सारांश: योग के प्राचीन ग्रंथों में घेरण्ड संहिता (17वीं शताब्दी का ग्रंथ) विशेष स्थान रखता है। इसमें सप्तांग योग को बताया गया है, जिसमें प्रथम सोपान षट्कर्म शुद्धि क्रिया मानी गई है। इसका उद्देश्य साधक के शरीर और मन को शुद्ध कर उच्चतर साधना के लिए तैयार करना है। षट्कर्म (धौती, वस्ति, नेति, लौलिकी/नौली, त्राटक और कपालभाँति आदि घेरण्ड संहिता के षट्कर्म शुद्धि क्रियाएं साधक के लिए योग साधना का प्रथम एवं अनिवार्य सोपान है यह शरीर, मन, आत्मा को शुद्ध कर उच्चतर साधना की आधारभूत तैयार करती है।

कुंजीभूत शब्द— षट्कर्म, योग, लौलिकी, ब्रह्म, आत्मा, कपालभाँति, घेरण्ड संहिता, साधक, लौलिकी/नौली, त्राटक, कपालभाँति ।

योग भारतीय संस्कृति एवं आध्यात्मिक विरासत का अभिन्न अंग है। यह केवल शारीरिक व्यायाम नहीं बल्कि एक संपूर्ण जीवन पद्धति है जो शरीर, मन, आत्मा एवं ब्रह्म के मध्य सामंजस्य स्थापित करता है। योग के इस विशाल और विविध परंपरा में हठयोग एक महत्वपूर्ण शाखा है, जिसका उद्देश्य शारीरिक और मानसिक शुद्धि के माध्यम से आत्म साक्षात्कार की ओर बढ़ना है इस परंपरा में कुछ प्रमुख ग्रंथ हैं: हठयोग प्रदीपिका, शिव संहिता और घेरण्ड संहिता। इन ग्रंथों ने साधक को एक व्यवस्थित मार्गदर्शन दिया है कि किस प्रकार वह क्रमिक साधनाओं द्वारा अपने शरीर प्राण और चित्त का शोधन कर आध्यात्मिक उर्ध्वगमन की दिशा में अग्रसर हो सकता है।

हठयोग ग्रंथों में षट्कर्म का स्पष्ट उल्लेख किया गया है। जो की सूत्रात्मक होते हुए भी अत्यंत सारगर्भित है हठयोग के ग्रंथों-शिव संहिता में अंशतः हठयोग प्रदीपिका में विस्तृत रूप से तथा घेरण्ड संहिता में तो इसका बड़ा ही क्रमबद्ध व्यवस्थित एवं विस्तृत उल्लेख है। घेरण्ड संहिता में स्पष्ट कहा गया है कि शरीर और मन की शुद्धि के बिना साधक योग के उच्च स्तर तक नहीं पहुंच सकता, इसलिए शुद्धि क्रियाओं को योग साधना की नींव माना गया है। यह क्रियाएं केवल शारीरिक शुद्धि के लिए ही नहीं अपितु मानसिक और आध्यात्मिक शुद्धि की दिशा में भी सहायक होती है।

घेरण्ड संहिता का संक्षिप्त परिचय— भारतीय योग परंपरा में घेरण्ड संहिता का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। यह ग्रंथ हठयोग पर आधारित प्रमुख ग्रंथों में से एक है। माना जाता है कि इसकी रचना लगभग 17वीं शताब्दी के आसपास हुई थी। यह ग्रंथ संवादात्मक शैली में रचा गया है। जिसमें गुरु घेरण्ड और शिष्य चण्डकपालि के बीच योग के रहस्यों पर संवाद हुआ है। इस संवाद शैली में चण्डकपालि अपने गुरु से योग के रहस्यों और साधना-पद्धति के विषय में प्रश्न करता है तथा गुरु घेरण्ड उसे विस्तारपूर्वक उत्तर देते हैं, इस प्रकार यह ग्रंथ शिष्य-गुरु संवाद के रूप में अत्यंत सहज और व्यावहारिक रूप से प्रस्तुत होता है।

ग्रंथ की संरचना एवं सप्तांग योग— घेरण्ड संहिता में कुल 7 अध्याय और लगभग 351 श्लोक हैं इसमें योग को सप्तांग योग के रूप में निरूपित किया गया है।

1. **शुद्धि क्रिया (शोधन षट्कर्म)** शरीर और मन की शुद्धि के लिए 6 प्रकार की क्रियाओं का वर्णन किया गया है।
2. **स्थैर्य (आसन)**— शरीर को स्थिर और बलवान बनाने में 32 आसनों का वर्णन किया गया है।
3. **मुद्रा**— साधक की शक्ति को जागृत करने हेतु 25 मुद्रा और बंध का वर्णन किया गया है।
4. **प्रत्याहार**— इंद्रियों को नियंत्रित करने के 5 उपाय बताए गए हैं।
5. **प्राणायाम**— श्वास-प्रश्वास को नियंत्रित करने के आठ प्रकार बताए गए हैं।
6. **ध्यान**— मन की एकाग्रता और ज्ञान की 6 अवस्थाओं का वर्णन किया गया है।
7. **समाधि**— आत्मा और परमात्मा के मिलन की तीन प्रकार की अवस्थाओं।

षट्कर्म (शुद्धि क्रियाओं) का विवेचन— इस शोध पत्र में शरीर की शुद्धि हेतु 6 शुद्धि कर्मों का वर्णन किया गया है, जो इस प्रकार हैं:

1. **धौती**— इसके चार प्रकार हैं: अंतर्धौती, दंतधौती, हृदय धौती, वह मूलशोधन इससे वात, पित्त, कफ की साम्यता, पेट के ऊपरी भाग के साथ मुंह, गला व अन्ननलिका की सफाई होती है तथा पाचन संबंधी विकार दूर होते हैं, साथ ही नाड़ी शुद्धि, चक्र व कुंडलिनी जागरण में भी सहायक है।

लाम— आंतरिक शुद्धि की क्रिया— अपच, एसिडिटी, कफ विकार में राहत पेट व छाती की सफाई की जाती है।

2. **वस्ति**— यह दो प्रकार की है जल व शुष्क वस्ति इससे आंतों व गुदा भाग की सफाई होती है। पुराने विकार दूर होने के साथ ही नए विकार उत्पन्न नहीं हो पाते इससे पाचन व उत्सर्जन तंत्र स्वस्थ, मूलाधार, मणिपुर व स्वाधिष्ठान चक्रों पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

लाम— मलाशय की शुद्धि, पेट के रोगों से छुटकारा।

3. **नेति**— यह दो प्रकार से की जाती है— जल व सूत्र नेति इससे श्वसन व तंत्रिका तंत्र की स्वस्थता प्राप्त होती है। कफ विकार का संतुलन प्राप्त करके नाड़ी शुद्धि की जाती है। जो आसन, प्राणायाम व ध्यान हेतु आवश्यक है।

लाम— नाक साइनस, एलर्जी, जुखाम, में राहत नाक, कान, गला रोगों में कारगर मानी जाती है।

4. **नौली/लौलिकी**— यह चार प्रकार की है— मध्यम, वाम, दक्षिण व भ्रमर पेट, रेकटाइल पेशी व गुर्दे आदि का व्यायाम इससे होता है। पाचन व श्वसन तंत्र के लिए अत्यंत उपयोगी कर्म है। मणिपुरक व स्वाधिष्ठान चक्रों पर सकारात्मक प्रभाव होता है।

लाम— पाचन शक्ति में वृद्धि, उदर रोगों में लाम।

5. **त्राटक**— इसके तीन प्रकार हैं वहिः, अंतः व अधो त्राटक यह नेत्रों व मस्तिष्क हेतु अत्यंत लामप्रद है, आज्ञा चक्र पर प्रभावी होने के कारण ध्यान हेतु आवश्यक है।

अनुरूपी लेखक/ संयुक्त लेखक

ASVP PIF-9. 805 /ASVS Reg. No. AZM 561/2013-14



लाम- नेत्र ज्योति में वृद्धि, एकाग्रता में सुधार, मानसिक स्वास्थ्य के लिए लाभकारी है।

6. कपालभाति- तीन प्रकार से की जाती है, वातक्रम, व्युत्क्रम व शीतक्रम यह शुद्धि हेतु उपयोग में लाया जाने वाला कर्म है। इससे श्वसन, पाचन, तन्त्रिका, अंतःस्रावी व उत्सर्जन तंत्रों को लाभ प्राप्त होता है। त्रिविकारों को संतुलित करने के साथ ही प्राणों का विस्तार, अनेक रोगों का निदान, चक्र व कुंडलिनी जागरण आदि में सहायक है।

लाम- फेफड़ों की कार्यक्षमता बढ़ाने में सहायक बताया गया है, जो की मानसिक स्वास्थ्य के लिए लाभकारी है।

सावधानियाँ- सभी क्रियाएं प्रशिक्षित गुरु के मार्गदर्शन में ही की जानी चाहिए गलत ढंग से करने में हानि हो सकती है। जैसे- नेति से नाक में संक्रमण, धौती से आंतरिक क्षति हो सकती है।

षट्कर्म तथा शारीरिक, मानसिक आरोग्य की अवधारणा- विश्व की प्रायः सभी महान सभ्यताएँ व धर्म आरोग्य को सर्वाधिक आवश्यक मानते हैं। सामान्य व्यवहार में आरोग्य का अर्थ निरोग समझा जाता है। जबकि यह अर्थ पूर्ण नहीं है। आरोग्य को यदि स्वस्थता के सन्दर्भ में समझा जाय तो अधिक अच्छा है। स्वास्थ्य के अन्तर्गत शारीरिक व मानसिक पुष्टि भी आवश्यक है। आधुनिक जीवन शैली में लौकिक उद्देश्यों को अधिक व आध्यात्मिक उन्नति को अल्प महत्त्वपूर्ण माना जा रहा है, ध्यान देने योग्य विषय यह है कि आरोग्य या स्वास्थ्य के अभाव में तो मनुष्य लौकिक दृष्टि से भी सफलता प्राप्त नहीं कर सकता। मानव यद्यपि लौकिक उद्देश्यों की प्राप्ति का ध्येय रखे अथवा आध्यात्मिक उन्नति का दोनों ही समग्र स्वस्थता के अभाव में असंभव है। क्योंकि अपने लक्ष्य की प्राप्ति हेतु स्वस्थ शरीर के साथ ही स्वस्थ मन-मस्तिष्क प्राथमिक शर्त है। शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य एक दूसरे के पूरक हैं। शारीरिक व मानसिक शुचिता अथवा पवित्रता से ही समुचित स्वास्थ्य प्राप्त होता है। विकारों से ही रोग व अस्वस्थता की उत्पत्ति होती है। अतः विकार-निवृत्ति से ही दुःख निवृत्ति संभव है अन्यथा नहीं। शरीर धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष चारों पुरुषार्थों का साधन है। इसीलिए आरोग्यता युक्त स्वस्थ शरीर की साधन रूप में सुरक्षा करना लौकिक व आध्यात्मिक दोनों दृष्टिकोणों से प्राथमिक आवश्यकता है।

भारतीय चिकित्सा पद्धति में वात, पित्त व कफ के कुपित होने अर्थात् विषमनुपात की स्थिति में ही रोगोत्पत्ति होना बताया गया है। यह अनियमित आहार-विहार, दिनचर्या व अप्राकृतिक रहन-सहन के कारण होता है। ये कारण अशुद्धियों या विकारों के रूप में शरीर में रोगों के वाहक होते हैं। यदि अशुद्धियों को दूर करने तथा उनके उत्पन्न होने से पूर्व कोई प्राकृतिक रक्षात्मक प्रणाली ऐसी हो जो वात, पित्त व कफ का समानुपात बनाये रखे व साथ ही अन्य अशुद्धियों को दूर करने में भी सक्षम हो तो मानव मात्र हेतु यह श्रेष्ठ साधन होगा। ऐसी एकमात्र प्राकृतिक शुद्धि पद्धति षट्कर्म ही है। षट्कर्म द्वारा आरोग्य प्राप्ति का सीधा सम्बन्ध शुद्धि द्वारा त्रिदोष (वात, पित्त व कफ) के समानुपात को बनाये रखने से है। इसीलिए शुद्धि की महत्ता को जानना अनिवार्य है। अब हम धार्मिक, नैतिक, दार्शनिक व व्यावहारिक दृष्टि से शुद्धि के महत्त्व पर प्रकाश डालने का प्रयत्न करेंगे।

(अ) धार्मिक दृष्टि से शुद्धि का महत्त्व- प्रायः प्रत्येक धर्म आन्तरिक व बाह्य शुद्धि को व्यक्ति के नैतिक व आध्यात्मिक कल्याण के लिए अनिवार्य रूप से जीवन का अभिन्न अंग मानता है। सर्वप्रथम धर्म का शाब्दिक व दार्शनिक अर्थ व लक्षण जानना आवश्यक है। उसके पश्चात् इसी परिप्रेक्ष्य में शुद्धि के महत्त्व को स्पष्ट करने का प्रयत्न करेंगे।

(ब) नैतिकता हेतु शुद्धि की अनिवार्यता- नैतिकता में शुद्धि की भूमिका को जानने के लिए नैतिक निर्देशों को जानना चाहिए। इन्हें जानने के बाद ही हम इस परिप्रेक्ष्य में शुद्धि की प्रासंगिकता को स्पष्ट कर सकेंगे। नीतिशास्त्र के अन्तर्गत व्यक्ति को श्रेयस् की ओर प्रवृत्त करने हेतु उचित अनुचित, शुभ-अशुभ, सकारात्मक नकारात्मक प्रयासों के निर्णय सम्बन्धी जिन नियमों का निर्देशन किया गया है, वे सभी नैतिकता की श्रेणी में हैं। नैतिकता व धर्म का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। एक की अनुपस्थिति में दूसरे की कल्पना करना भी व्यर्थ है। नैतिकता जीवन को सुखमय व श्रेष्ठ बनाते हुए पारलौकिक जीवन को भी धन्य करने में सक्षम होता है। परमशुभ लक्ष्यों की प्राप्ति के नीति निर्धारण का आधार व्यक्ति के आचरण की पवित्रता ही है। आचरण की पवित्रता आन्तरिक व बाह्य शुद्धि पर निर्भर है। हठयोग में सर्वप्रथम इसी शुद्धि या पवित्रता का निर्देश है। इस सम्बन्ध में श्री अरविन्द के विचार उल्लेखनीय हैं, उनके अनुसार, योगमात्र अपनी प्रणाली में साधना के तीन मूल तत्त्वों के द्वारा अग्रसर होता है शुद्धि, एकाग्रता व मुक्तता। शुद्धि अर्थात् हमारे भौतिक, नैतिक और मानसिक संस्थान में सत्ता के शक्ति की मिश्रित व अनियमित क्रिया से जो भी भूलें, गड़बड़ियाँ व बाधाएँ उत्पन्न होती हैं, उन सब को दूर करना

(स) दार्शनिक दृष्टि से शुद्धि की महत्ता- जिसके द्वारा देखा जाय वह दर्शन है। देखना अर्थात् वस्तु का तात्त्विक स्वरूप जानना। दर्शन का उद्देश्य है: प्राणिमात्र को दुःख निवृत्ति की ओर प्रवृत्ति। त्रिविध दुःख निवृत्ति के लिए सब प्रकार के मनोशारीरिक दोषों की निवृत्ति आवश्यक है। जैसा कि हम पूर्व में भी स्पष्ट कर चुके हैं कि, इसके लिए त्रिदोष (वात, पित्त व कफ) की सामान्यवस्था होना अनिवार्य है व यह शुद्धि द्वारा ही संभव है। भारतीय दर्शन की विभिन्न दर्शन शाखाओं यथा उपनिषद्, गीता, सांख्य व योग, न्याय व वैशेषिक तथा मीमांसा व वेदान्त तथा नास्तिक दर्शन यथा जैन व बौद्ध ने भी शुद्धि को कल्याण का प्रथम व अनिवार्य सोपान माना है। इस सम्बन्ध में सर्वप्रथम उपनिषद् दर्शन के विचारों को जानने का प्रयास करेंगे।

षट्कर्म में अपनाये जाने वाले आवश्यक नियम-

क. योग्य एवं पारंगत गुरु का मार्गदर्शन (प्राथमिक आवश्यकता)- षट्कर्म का अभ्यास पहली बार आरम्भ करना हो, तो षट्कर्म में पारंगत व योग्य योग गुरु का सान्निध्य प्राप्त करके गुरु के निर्देशानुसार ही षट्कर्म करने आवश्यक है, मात्र पुस्तक के आधार पर अभ्यास करना उचित नहीं है। यह लाभ के स्थान पर हानिप्रद भी हो सकता है। एक बार अभ्यास प्रारम्भ कर लेने पर भी पारंगत होने तक गुरु के निर्देशों का पालन करना आवश्यक है। अभ्यस्त होने पर भी षट्कर्म सम्बन्धी ग्रन्थोक्त निर्देशों का पालन आवश्यक है। नियमों के पालन न करने पर कोई भी शारीरिक या मानसिक क्षति हो सकती है।

ख. ऋतु चयन- पहली बार अभ्यास प्रारम्भ करने हेतु बसन्त ऋतु का ही चयन श्रेष्ठ है। अभ्यस्त या पारंगत होने के पश्चात् शारीरिक, मानसिक व आध्यात्मिक लाभों की प्राप्ति हेतु प्रत्येक कर्म सकारात्मक विचार षट्कर्म का अभ्यास सकारात्मक विचारों के साथ व तनाव रहित होकर, धीरे-धीरे बिना किसी बल का प्रयोग किये करना आवश्यक है। सकारात्मक विचारों से ही अपेक्षित शारीरिक, मानसिक व आध्यात्मिक लाभ प्राप्त होंगे। सात्त्विक आहार षट्कर्म के अभ्यास को करते हुए आहार का सात्त्विकतायुक्त होना आवश्यक है। यथा दुग्ध, घृत, मट्ठा युक्त भोजन, शाकाहार, पतली खिचड़ी, दालें, रोटी, सब्जी, सलाद आदि स्निग्ध भोजन। षट्कर्म के अभ्यास को करते हुए मांसाहार, तेज मसालेदार, तेज खट्टा, भारी या अधिक तैलीय गरिष्ठ भोजन, चाय व कॉफी वर्जित है। इस प्रकार के खाद्य पदार्थ षट्कर्म के अभ्यास के तुरन्त बाद करना किसी भी शारीरिक क्षति व रोग को जन्म देते हैं, इसीलिए ऐसा भोजन नितान्त वर्जित है।



ग. अभ्यास का समय एवं आवृत्ति- सामान्यतः सूर्योदय से पूर्व जागकर, प्रातःकाल एवं भोजन से पूर्व अर्थात् खाली पेट ही षट्कर्म किये जाने चाहिए, इसके साथ ही प्रत्येक कर्म के प्रकारान्तरेण के अनुसार उनके अन्तर्गत निर्देशित अभ्यास के समय व आवृत्ति सम्बन्धी निर्देशों व सावधानियों का ध्यान रखना आवश्यक है।

घ. नियमित दिनचर्या- षट्कर्म के अभ्यास में दिनचर्या का नियमित होना आवश्यक है। जिसके अन्तर्गत नित्यकर्म (शौच, दांत साफ करना व स्नान आदि हैं), भोजन का उचित मात्रा में व समय पर किया जाना, रात्रि को शीघ्र सोना व प्रातःकाल ब्रह्ममुहूर्त में जागना, नित्यप्रति के दैनिक व विशेष कार्यों का सम्पादन बिना तनाव लिए सकारात्मकता के साथ, योजनाबद्ध ढंग से करना आवश्यक है। सकारात्मक विचार षट्कर्म का अभ्यास सकारात्मक विचारों के साथ व तनाव रहित होकर, धीरे-धीरे बिना किसी बल का प्रयोग किये करना आवश्यक है। सकारात्मक विचारों से ही अपेक्षित शारीरिक, मानसिक व आध्यात्मिक लाभ प्राप्त होंगे।

उपरोक्त के साथ ही योग सम्बन्धी आवश्यक सामान्य नियम षट्कर्म के अभ्यासी को भी उसी प्रकार निर्वाहित करने आवश्यक हैं। तभी वांछित लाभ प्राप्त होने संभव हैं।

षट्कर्म का शारीरिक व मानसिक आरोग्य में महत्त्व- प्रस्तुत क्रमिक अध्ययन में सर्वप्रथम यह जानना अनिवार्य है कि विकारजन्य अस्वस्थता क्या है। व उसकी उत्पत्ति के कारण क्या है। चरक संहिता में स्पष्टतया उल्लेख है कि त्रिदोष व सप्तधातुओं की वैषम्यता ही रोगों का कारण है। वात, पित्त व कफ तथा रस, रक्त आदि सप्त धातुओं की विकृति (वैषम्यावस्था) को विकार कहते हैं। त्रिविध दोषों व सप्त धातुओं की साम्यावस्था को प्रकृति कहते हैं। आरोग्य सुख व विकृति दुःख की सज्ञा है।

इसी को त्रिगुणों के परिप्रेक्ष्य में इस प्रकार स्पष्ट किया गया है, वात, पित्त व कफ जन्य दोषों से शरीर रोगों की प्राप्ति होती है। रजोगुण व तमोगुण के कारण काम, क्रोध और लोभादि संज्ञक मानस रोगों की प्राप्ति होती है। इस प्रकार उपरोक्त विवेचन से रोगों के मूल में त्रिविकारों का असंतुलन ही सिद्ध होता है। हम इन विकृतियों को दूर करने के लिए चिकित्सा के सही अर्थ को समझने का प्रयास करेंगे। जिससे सच्चे अर्थों में सम्पूर्ण स्वास्थ्य को प्राप्त किया जा सके। आयुर्वेद में चिकित्सा को इन शब्दों में समझाया गया है। अर्थात् धातुओं की विकृति से व्यक्ति के रोगी हो जाने पर वैद्यादि चारों पादों (वैद्य, द्रव्य, परिचारक व रोगी) द्वारा धातुसाम्यार्थ जो क्रिया की जाती है, उसे चिकित्सा कहते हैं।

इस प्रकार आयुर्वेद में चिकित्सा हेतु पंचकर्म की अवधारणा आंशिक रूप से षट्कर्म के समान है। पंचकर्म के समान षट्कर्म द्वारा पाचन, तन्त्रिका, श्वसन, रक्त-परिसंचरण, अन्तःस्त्रावी, उत्सर्जन व पेशी तन्त्र पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। इन्हीं की स्वस्थता पर सम्पूर्ण शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य निर्भर करता है। होम्योपैथी एवं ऐलोपैथी चिकित्सा पद्धतियों में अनेक दोष हैं। क्रमशः प्रथम चिकित्सा तो रोगोपचार में अत्यधिक समय लेती है तथा द्वितीय से औषधियों के अतिरिक्त नकारात्मक प्रभाव हैं व इसके साथ ही रोग समूल समाप्त नहीं हो पाते। आयुर्वेद में औषधियों के नकारात्मक प्रभाव तो नहीं, किन्तु यह लम्बी अवधि रोगोपचार में ले लेता है।

उपरोक्त सभी पद्धतियों में रोगोत्पत्ति के पश्चात् ही निवारण का प्रयास किया जाता है। यदि षट्कर्म को रोगोत्पत्ति से पूर्व बचाव व उसके पश्चात् चिकित्सा के रूप में प्रयोग किया जाय तो यह आरोग्य का उत्कृष्ट साधन सिद्ध हो सकता है।

यह प्राकृतिक चिकित्सा के समान ही उपयोगी सिद्ध होगा। हम निष्कर्षतः इस तथ्य पर पहुँचते हैं कि यदि षट्कर्म को उचित विधि, सावधानी, सीमाओं नियमों, उचित आहार-विहार के साथ व योग्य योग गुरु के निर्देशन में किया जाय तो आधुनिक व्यस्ततम जीवन शैली में समायोजित करते हुए, आरोग्य क्षेत्र की मुख्य धारा से जोड़कर हम जीवन के नवीन विकसित आयामों को प्राप्त कर सकते हैं।

निष्कर्ष- यही कहा जा सकता है कि विश्व की प्रायः सभी महान सभ्यताओं में शुद्ध की महत्ता को स्वीकारते हुए भी अन्य किसी भी सभ्यता व संस्कृति में शारीरिक व मानसिक शुद्धि की इतनी प्राकृतिक, वैज्ञानिक यांत्रिक व तकनीक दृष्टि से समृद्ध पद्धति उपलब्ध ही नहीं है। इसलिए षट्कर्म का महत्त्व स्वयं ही सिद्ध हो जाता है। ऐसी विद्या को उपयोगी बनाने हेतु पूर्ण जानकारी व प्रचार-प्रसार की आवश्यकता है। जिससे मानवत कल्याण के नित नये सोपनों पर प्रतिष्ठित हो सके। यह शोध पत्र इसी क्षेत्र में एक विनम्र प्रयास है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. दिगंबर जी स्वामी एवं झा, पीतांबर (1980) हठप्रदीपिका (स्वात्माराम-कृत) कैवल्यधाम श्री मन्माधव योग मंदिरसमिति, लोनावाला (पुणे)।
2. शर्मा, सुरेंद्र कुमार (1985) हठयोग - एक ऐतिहासिक परिपेक्ष एवं हठयोग प्रदीपिका, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली।
3. भारतीय दर्शन की रूपरेखा प्रोफेसर हरेंद्र प्रसाद सिंहा।
4. हठरत्नावली श्री निवास।
5. द्वारिकादास शास्त्री, स्वामी (2009) हठयोग प्रदीपिका, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी।
6. सरस्वती, निरंजनानन्द (1997) घेरण्ड संहिता, योग पब्लिकेशन ट्रस्ट, मुंगेर (बिहार)।
7. गुप्त एस० एन० दास, भारतीय दर्शन का इतिहास, राजस्थान (हिन्दी)।
8. श्री अरविन्द, 1969, भाषानुवादक जगन्नाथ वेदालंकार, योग समन्वय, श्री अरविन्द आश्रम, पाण्डिचेरी।
9. राधेश्याम खेमका, 2001 कल्याण आरोग्यांक, गोविन्द भवन कार्यालय, गीताप्रेस गोरखपुर।
10. उपरोक्त।
11. उपरोक्त।
